अध्याय 6
धर्म की भारतीय अवधारणा

(i) धर्म का अर्थ एवं स्वरूप :

प्रकृति का संचालन कतिपय नियमों एवं नैतिक मर्यादाओं के अनुरूप होता है। वही मर्यादाएं इस संचालन का आधार होती है, जिसे धर्म कहा जाता है। धर्म सनातन है। धर्म, गैर विभाजनकारी गैर अनन्य, और गैर निर्णायक है। धर्म एक व्यक्तिगत स्तर पर ब्रह्माण्ड और चेतना के आदेश के क्रम में ब्रह्माण्ड को समझने के लिए एक अन्वेषण है। धर्म, मानव कल्याण के लक्ष्य का सौपान है परन्तु इसके लिये धर्म के सही स्वरूप को समझना आवश्यक है। ''धर्म'' अपने स्वरूप और लक्ष्य को स्वयं स्पष्ट करता है। धर्म से तात्पर्य है, वह, जो समस्त विश्व को धारण कर रही है, अर्थात सम्पूर्ण विश्व का मूल आधार और समाज की एकता को मूर्तिमान करने वाला सशक्त माध्यम है। धर्म का अर्थ है ''कर्त्तव्यपरायणता''। व्यक्ति का स्वयं के प्रति , परिवार के प्रति, देश समाज के प्रति, यहां तक के मानव मात्र या प्राणिमात्र के प्रति क्या कर्तव्य है ? उन्हें पूरा करना क्यों आवश्यक है ? इसकी व्याख्या–विवेचना करने वाला एक शब्द में धर्म कहा जाता है।

धर्म शब्द 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है धारण करना। मुनि व्यास ने प्रज्ञा को धारण करने के अर्थ में धर्म की व्याख्या की है ''धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रज्ञाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं सधर्मइतिनिश्चयः।'' अर्थात्– धारण करने से इसका नाम धर्म है। महामुनि कणाद ने कहा हैः– ''यतोऽभ्युदय निश्श्रेयस्सिद्धि स धर्मः। अर्थात्–जिससे इस लोक और परलोक दोनों में सुख मिले, वही धर्म है। किन्तु उक्त व्याख्या अंशतः ही सही है। धर्म जीवन का आधार है। आधार उसे कहते है, जिसके सहारे स्थिर रह सके, कुछ टिक सके। कितनी भी बड़ी इमारत क्यों न हो, उसका आधार नींव के पत्थर होते है। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी आधार पर ही अवस्थित है। यहां तक ग्रह, तारे, नक्षत्र, जो अन्तरिक्ष में, शून्य में अवस्थित प्रतीत होते हैं, वे भी पारस्परिक आकर्षण शक्ति को आधार बनाए हुए हैं। आधार रहित कुछ भी नहीं हैं। वह आधार है धर्म।

वर्तमान समय के कतिपय चिन्तक और तथाकथित दर्शन मर्मज्ञ धर्म को सम्प्रदाय अथवा पंथ के रूप में प्रस्तुत करते है, जो भारतीय धर्म अवधारणा के आस पास भी नहीं है। चाहे वेद हो या वेदान्त, महाभारत हो या मनुस्मृति, श्रीमद्भागवत हो या श्रीमद्भगवतगीता–सर्वत्र धर्म शब्द नैतिक विधानों या आदर्शों के लिये प्रयुक्त हुआ है। मनु ने जिन दस आदर्शों को धर्म के लक्षण बताया है ''धृति, क्षमा, संयम, अचौर्य, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, विवेक, विद्या, सत्य एवं अक्रोध'' अथवा व्यास ने जिन तीस आदर्शों को धर्म का सामान्य लक्षण माना था ''सत्य, तप, शुचिता, दया, सहिष्णुता, विवेक, निग्रह, संयम, ब्रह्मचर्य, त्याग, अहिंसा, स्वाध्याय, सन्तोष, सरलता, सम्यक् दृष्टि, सेवा, निःस्पृहता, उदासीनता, मौन, आत्म–चिन्तन, ईश्वर चिन्तन, ईश्वर सेवा, अराधना, दास्य, सख्य, समर्पण, सत्संग, सर्वात्मीयता, पूजा, स्तुति'' ये नैतिकता के ही अंग है। भारत की धार्मिक परंपराओं में धर्म के बुनियादी मूल्यों का साँझा स्वरूप हैं। इनमें अहिंसा, सत्य, दया और त्याग की तरह नैतिक सिद्धांत स्वतः सम्मिलित है। वे पवित्र रूप में सभी के जीवन और पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना की मान्यता के लिए आवश्यक है। भारतीय वर्णाश्रम सिद्धान्त मानव के जीवन की विभिन्न अवस्था एवं भूमिका में धर्म को परीलक्षित करता है। अर्जुन को श्री कृष्ण द्वारा प्रदत्त गीता का संदेश मानव के धर्म का एवं उसके पालन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। एक क्षत्रिय योद्धा का युद्ध काल में आवश्यक धर्म निभाते हुए ही श्री अर्जुन द्वारा अपने पितामाह के समक्ष गाण्डिव लेकर खड़े हुए थे।

बौद्ध भिक्षु यू. थित्तील ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''यह एक शाश्वत् सत्ता एवं विश्व का प्राण है। इसे समस्त संसार को परिचालित करने वाला सिद्धान्तों का ऐसा समुच्चय समझा जा सकता है, जिसमें प्राणी मात्र का कल्याण सन्निहित है।'' वे अपनी पुस्तक ''दी पाथ ऑफ बुद्धा'' में लिखते है कि सूर्य चंद्र, पुष्प, पवन, पर्वत, सरिता पावक, अन्न आदि अपना–अपना धर्म निभा रहे है। इसीलिये जीवन चल रहा है एवं जगत स्थिर है। सूर्य अपना कार्य नहीं करेगा, अग्नि अपना दाहक धर्म खो देगी , उस दिन विश्व का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा । मनुष्य जीवन में भी धर्म का अवतरण इसी प्रकार होना चाहिये, जो समस्त विश्व को स्वयं में समाहित कर ले।

मनीषियों ने धर्म के दो भाग बताये है, पहला है कलेवर, दूसरा प्राण। कलेवर समय–समय पर आवश्यकता के अनुरूप बदलता रहता है, पर प्राण की सत्ता सदा एक जैसी रहती है। प्राण धर्म के वे शाश्वत सिद्धान्त है, जिन पर देश, काल की परिस्थितियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा एक जैसे बने रहते हैं। धर्म का अस्तित्व इस प्राण सत्ता पर टिका हुआ है, जब कि कलेवर परिवर्तनशील है और समय–समय पर उसमें सुधार एवं परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। धर्म का परिस्थिति अनुरूप परिवर्तनीय कलेवर ही विभिन्न सम्प्रदाय रूपों में दृष्टिगत होता है विभिन्न पंथ विभिन्न परिस्थितियों में जन्में और विकसित हुए है। प्रत्येक की अपनी महत्ता और उपयोगिता

है, पर कब ? जब कि वें धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करें तथा मनुष्य जीवन के प्रमुख लक्ष्य की ओर उन्मुख रहें।

वस्तुतः धर्म शब्द का जितना व्यापक और विविधतापूर्ण प्रयोग भारतीय परम्परा ने किया है, उतना शायद ही किसी ने किया हो। धर्म चूंकि जीवन के मार्ग एवं और लक्ष्य दोनों के अर्थो में में प्रयुक्त होता था, इसलिये दार्शनिक अपनी प्रणाली अथवा परम्परा के अनुसार पृथक–पृथक अर्थ दे देतें है। सिद्धान्त चन्द्रिका नामक ग्रन्थ में इनका संक्षिप्त समेकन करते हुए कहा है कि ''सांख्य मनोवृत्ति विशेष को, बौद्ध चित्त की शुभ वासना को, जैन पुद्गल स्वरूप को, वैशेषिक आत्मा के विशेष गुण को तथा मीमांसक अपूर्व को धर्म मानते है।''

धर्म के अर्थ– व्यावहारिक रूप में भी धर्म के कम से कम तीन मुख्य अर्थ तो समझे जा सकते हैं–

प्रथम– नैतिक सद्गुण, जिस अर्थ में वेदों–स्मृतियों–काव्यों आदि में धर्म का प्रयोग हुआ है।

द्वितीय– प्राकृतिक गुण, जिस अर्थ में हम किसी वस्तु विशेष के स्वभाव या लक्षण के निर्देशन हेतु धर्म का प्रयोग करते है।

तृतीय– साम्प्रदायिक पंथ, जिस अर्थ का प्रयोग सामान्य अर्थ में वर्तमान में किया जाने लगा है।

यह स्पष्ट है कि यह, जो धर्म का तृतीय अर्थ है, प्रारंभ में वह धर्म का अर्थ नहीं था। कालातंर में भी वह अर्थ धर्म का गौण अर्थ ही था। संभवतः वर्णाश्रम धर्म की व्याख्या के साथ वर्ग विशेष के सामाजिक विधान के अर्थ में रूढ़ होने लगा था और बुद्ध ने अपने त्रिरत्न सिद्धान्त बुद्ध, धर्म, संघ, द्वारा इसे चरम पर पहुंचा दिया। बुद्ध से पूर्व भारतीय संस्कृति में न तो वर्ग–विशेष की अवधारणाओं को धर्म की संज्ञा दी जाती थी, न कि उसका कोई वक्ता था और न ही वह संघात्मक रूप में संगठित था। बुद्ध ने अनजाने में धर्म को पंथ की दिशा दे दी।

भारतीय परम्परा में धर्म का वर्गीकरण–

भारतीय परम्परा में धर्म का त्रिविध वर्गीकरण उल्लेखनीय है:–

प्रथम–सामान्य धर्म। इसमें मूलतः नैतिक एवं आध्यात्मिक आर्दश होते थे, जो सभी के लिये समान होते थे।

द्वितीय–विशेष धर्म। इसमें मुख्यतः सामाजिक विधान और बाहरी बंधन होते थे, जो वर्ण जाति, आश्रम, कुल, देश, पद, युग के अनुसार भिन्न हो जाते है ।

तृतीय–आपद्धर्म। इसमें कोई पृथक धर्म नहीं होता, अपितु पृथक्–पृथक् विशेष धर्म वालों को आपत्तिकाल में एक–दूसरे का धर्म अपनाने की छूट मिल जाती है। यह एक प्रकार से विशेष धर्म का ही अपवाद है।

भारतीय परम्परा में प्रायः धर्म को कर्म की भी संज्ञा दी जाती रही है और उसका भी इस अर्थ में त्रिविध वर्गीकरण करती रही है–विहित, काम्य एवं निषिद्ध। जिन विधानों को धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से अनिवार्य माना जाता है, वे विहित कर्म होते है। अनिवार्य न होकर भी वांछनीय होते है, वे काम्य कर्म होते है। तथा जो सर्वथा अस्वीकार्य होते है, वे निषिद्ध–कर्म माने जाते है। इस दृष्टि से समान्य धर्म को विहित कर्म, विशेष धर्म को काम्य कर्म तथा आपद्धर्म को निषिद्ध कर्म माना जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय दृष्टिकोण से धर्म को उसके गुण एवं कर्तव्यों के अनुरूप नैतिक आदर्श को माना जाता है। यह पूजा पद्धति, पंथ अथवा सम्प्रदाय से भिन्न है।

(2) रिलिजन का अर्थ एवं स्वरूप

अंग्रेजी का शब्द ''रिलिजन'' लेटिन भाषा के ''Religio'' शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है। मान्यता यह भी है कि यह शब्द ''Religere'' धातु से निष्पन्न है इसके तीन अर्थ है–

– एकत्रित करना (To collect)

– चयन करना (To Choose)

– आबद्ध करना (To Bind)

इस दृष्टि से रिलिजन वह विचार या दर्शन है, जो स्वयं वैज्ञानिक रूप से संकलित, चयनित तथा व्यवस्थित किया होता है फिर व्यावहारिक रूप से जनसामान्य को एकीकृत, वर्गीकृत और आबद्धिकृत करने का कार्य करता है। व्यावहारिक रूप से इसका अर्थ समाज को बांधने या व्यवस्थित करने वाला माना जाता है। उक्त तृतीय विवेचन को सर्वाधिक लोकप्रिय एवं मान्य समझा जाता है।

दूसरी व्याख्या के अनुसार रिलिजन शब्द Re उपसर्ग पूर्वक **Legere** धातु से बना है, जिसके भी तीन अर्थ माने जाते है–

– चयन करना (To pick or choose)

– मनन करना (To Consider or meditate)

– संबद्ध करना (To Link or relate)

वैसे तो रिलिजेयर और 'लिगेयर' शब्दों में बहुत फर्क नहीं लगता, किन्तु रि (Re) उपसर्ग लगने का अर्थ है–पुनः शब्द का जुड़ जाना। इस प्रकार दूसरी व्याख्या के अनुसार रिलिजन का अर्थ होता है –पुनः चयनित करना या पुनः संबद्ध करना या पुनः मनन करना। धर्म को सदा मौलिक माना जाता है ।

ऑक्सफोर्ड एडवांस्ड़ लर्नर्स डिक्शनरी का कहना है कि धर्म आस्था का सिस्टम है, जो कि एक विशेष देवता या देवताओं के अस्तित्व में विश्वास के आधार पर है। न्यू कोलिन्स शब्दकोश, दिव्य या मानव भाग्य का नियंत्रण मान कर, एक अलौकिक शक्ति(ओं) में विश्वास की कोई औपचारिक या

संस्थागत अभिव्यक्ति के रूप में धर्म का अर्थ देता है।

धर्म एवं रिलिजन में अन्तर–

प्रायः पश्चिम की अवधारणा अनुरूप रिलिजन, पंथ, मज़हब अथवा सम्प्रदाय को सामान्य अर्थ में धर्म के रूप में लिया जाता है, जो कि भारतीय धर्म अवधारणा के अनुरूप नहीं है। कर्म एवं सृष्टि के शाश्वत् नियमों पर आधारित भारतीय धर्म के लिये पश्चिम में वस्तुतः कोई स्पष्ट निरूपण नहीं है। रिलिजन पाश्चात्य विचार से उत्पन्न है, जिसमें पूजा पद्धति एवं आस्था के आधार पर बने लोगो का समूह रिलिजन अथवा धर्म को निरूपित करता है, जबकि धर्म भारतीय विचारधारा है जो कर्म का सहोदर है एवं नैतिक ब्रह्माण्ड नियमों को निरूपित करने वाला शाश्वत नियम है। जीवन में हमें जो धारण करना चाहिए, वही धर्म है अर्थात नैतिक मूल्यों का आचरण ही धर्म है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है। धर्म वह तत्व है जिसके आचरण से व्यक्ति अपने जीवन को चरितार्थ कर पाता है। यह मनुष्य में मानवीय गुणों के विकास की प्रभावना है, सार्वभौम चेतना का सत्संकल्प है। अतः पाश्चात्य रिलिजन जिसे सामान्य रूप में धर्म बुलाया जाता है वह पंथ अथवा मजहब के समान है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुसार ''रिलजन (पंथ) प्रार्थना एवं धार्मिक नियमों में संहिताबद्ध लोगों के आम विश्वासों का एक समूह है। संसार में विभिन्न प्रकार के रिलिजन (पंथ) है और इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के लोग है।'' माईकिल डोमीनो के रिलिजन को भारतीय धर्म से अलग करते हुए कहते है कि ''रिलिजन एक पश्चिमी अवधारणा है, भारतीय धर्म अवधारणा न तो रिलिजन और न ही वाद। यह सनातन धर्म तो वह है, जो ब्रह्मण्ड का शाश्वत नियम है, जो किसी भी सिद्धान्त में अनन्तिम ही रहता है।''

मध्ययुग में विकसित धर्म एवं दर्शन के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं के प्रति आज के व्यक्ति की आस्था कम होती जा रही है। मध्ययुगीन धर्म (पंथ) एवं दर्शन के प्रमुख प्रतिमान थे– स्वर्ग की कल्पना, सृष्टि एवं जीवों के कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना, वर्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश एवं काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा। उस युग में व्यक्ति का ध्यान अपने श्रेष्ठ आचरण, श्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा अपने वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान करने की ओर कम था, अपने आराध्य की स्तुति एवं जय गान करने में अधिक था।

विभिन्न पंथ अथवा रिलिजन के व्याख्याताओं ने संसार के प्रत्येक क्रियाकलाप को ईश्वर की इच्छा माना तथा मनुष्य को ईश्वर के हाथों की कठपुतली के रूप में स्वीकार किया, जबकि दार्शनिकों ने व्यक्ति के वर्तमान जीवन की विपन्नता का हेतु कर्म–सिद्धान्त के सूत्र में प्रतिपादित किया। इसकी परिणति मध्ययुग में यह हुई कि वर्तमान की सारी मुसीबतों का कारण भाग्य अथवा ईश्वर की मर्जी को मान लिया गया। नवीन बने पंथों ने पुरुषार्थवादी–मार्ग को दुरूह बना दिया और ईश्वर की भक्ति के लिये विभिन्न प्रतीकों का उद्भव होने लगा। पंथों की शिक्षाओं में ईश्वर प्राप्ति के लिये पूजा पद्धतियों का महत्व बढ़ने लगा। सुख एवं स्वर्ग की लालसा ने विभिन्न पंथों के मार्ग टटोलने के लिये मनुष्य को उद्वेलित किया। धीरे–धीरे उक्त पंथ अथवा रिलिजन का पीढ़ी हस्तान्तरण जन्म से होने लगा और जन्म के साथ ही मनुष्य का रिलिजन नियत होने लगा। अर्थात स्वीकार्य पंथ/रिलिजन के मर्म का महत्व कम होने लगा। भविष्यगत् धर्म परिवर्तन और असहिष्णुता का एक कारण यह भी बना।

धर्म एवं रिलिजन में अन्तर

1. धर्म का आधार ईश्वर और रिलिजन अथवा पंथ का आधार मनुष्य है। धर्म, उस ज्ञान का नाम है जिसे मनुष्यों और प्राणिमात्र के कल्याण के लिए परमात्मा ने आदि सृष्टि में प्रदान किया है। वहीं रिलिजन, वह है जिसे मनुष्यों ने समय समय पर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए स्वीकार किया और पुनःस्वार्थ सिद्धि के लिए उसका विस्तार किया।
2. धर्म ईश्वर प्रदत्त है, इसलिए एक है। इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी किसी के लिए भी भेद भाव नहीं है। इसके विपरित मत मतान्तर, मनुष्यों के बनाये होने के कारण बहुत से हैं।
3. धर्म सबका साझा है। रिलिजन या पंथ अपना अपना है सबका समान नहीं है।
4. धर्म सदा से है, शाश्वत है, नित्य है, इसलिए उसका नाश नहीं होता है। पंथ अथवा मत–मतान्तर उत्पन्न हैं, मनुष्यों द्वारा बनाये हुए हैं, इसलिए वे स्थाई नहीं है।
5. .धर्म बुद्धि, तर्क और विज्ञान का उपासक है, धर्म से कोई इन्कार नहीं कर सकता। रिलिजन या मत बुद्धि, तर्क और विज्ञान के सापेक्ष हो, आवश्यक नहीं है, इसका मानना न मानना इच्छा पर आधारित है।
6. धर्म, कर्मानुसार फल की प्राप्ति मानता है। रिलिजन या सम्प्रदाय सिफारिश और उपदेशों पर अवलम्बित है अर्थात पैग़म्बर अथवा उनकी किताब में उल्लेख ही पाप–पुण्य अथवा स्वर्ग–नरक का निर्णय करता है।
7. धर्म, ईश्वर से मनुष्यों का सीधा सम्बन्ध बताता है, वह आत्मा और परमात्मा के मध्य मे किसी पीर, पैग़म्बर, गुरु, ऋषि, मुनि, अवतार आदि की आवश्यकता नहीं समझता। रिलिजन या सम्प्रदाय ईश्वर और मनुष्यों के बीच में अपने पैगम्बर धर्म गुरूओं का अस्तित्व होता है।
8. धर्म, प्राणिमात्र के सुख के लिए है और मत मतान्तर या

रिलिजन केवल अपने अनुयायियों के सुख का उत्तरदायित्व लेता है।

9. धर्म, मनुष्य के पूर्ण जीवन का पुरोगम बताता है, परन्तु रिलिजन या मजहब में ऐसा कोई पुरोगम नहीं वह केवल मनुष्यों को जीवन बिताना सिखाता है।
10. धर्म में सृष्टि के नियम के विरुद्ध कुछ नहीं। रिलिजन अथवा पंथ में चमत्कार एवं विश्वास माने जाते हैं।
11. धर्म, स्त्री पुरुष को समान अधिकार देता है। पृथक–पृथक पूजा पद्धतियों में स्त्रियों की स्थिति पृथक पृथक होती है, उनके अधिकार एवं कर्तव्य भी पुरूषों से भिन्न बताए गये है।
12. धर्म में सत्य, सरलता, संतोष, स्नेह, सदाचार और चरित्र आवश्यक हैं, जब कि पंथ या सम्प्रदाय में निशान अथवा चिन्ह सम्प्रदाय की पहचान बनाते है। जैसे तिलक, कृपाण या दाड़ी रखना आदि। अतः धर्म और रिलिजन को एक समझना भारी भूल है।

इहलौकिकवाद अर्थात सैक्यूलेरिज्म

सैक्यूलेरिज्म तथा मानववाद आधुनिक काल की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रचलित अवधारणाओं में से है। इसलिये ही इस अवधारणा का प्रयोग दार्शनिक वांग्डमय की अपेक्षा व्यावहारिक, सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भों में अधिक होता है। 1851 ई. में जार्ज जैकब होलियॉक द्वारा प्रवर्तित मूलतः इस इहलौकिकवादी विचारधारा की अब तक अनेक विचारकों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप अनेक रूपों में व्याख्या कर दी है।

साधारण रूप में धर्मनिरपेक्षता शब्द के लिये अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द सैक्यूलेरिज्म (Secularism), जिसे लैटिन शब्द ''Seculam'' से बना है उसका मूल अर्थ है–यह जगत्। इस दृष्टि से सैक्यूलेरिज्म का वास्तविक अर्थ है–इहलौकिकतावाद। इस अवधारणा के मूल प्रवर्त्तक ''जार्ज जैकब होलियॉक'' ने जब यह शब्द रचा था, तो सोच समझ कर ही इसका नामकरण किया होगा। उन्होंने इसे अनीश्वरवाद (Atheism), भौतिकवाद (Materialism), प्रत्यक्षवाद (Positivism), अथवा समाजवाद (Socialism) बताया, जिससे यह अवधारणा पृथक अर्थ में स्पष्ट हो सकी । होलियॉक ने सदैव सैक्यूलेरिज्म अर्थात इहलौकिकवाद को सदैव अनीश्वरवाद से भिन्न माना। उनके अनुसार अनीश्वरवादी व्यक्ति न तो ईश्वरवादी होता है और न ही अनीश्वरवादी, वह तो स्वयं को इस दोनो से तदस्थ रह कर इस लोक के ज्ञान–कर्म पर केन्द्रित रहता है। यह धार्मिक एवं पारलौकित विवादों से तदस्थ रहने की विधा है, जिसे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में अपनाने हेतु दिशा प्राप्त होती है।

भारत में आने पर यह सैक्यूलेरिज्य अथवा इहलौकिकवाद शब्द संवैधानिक रूप में पंथनिरपेक्षवाद और व्यवहार में धर्मनिरपेक्षवाद के रूप में प्रचलित होने लगा और धर्मनिरपेक्षवाद को सर्वधर्म–समभाव के रूप में व्याख्यायित कर लिया। यह भारतीय सांस्कृतिक वैचारिक दृष्टि है कि किस प्रकार एक तटस्थ अवधारणा ''इहलौकिकवाद'' ने पश्चिम में निषेधात्मक ''अनिश्वरवाद'' और पूर्व यानि भारत मे भावात्मक प्रसार पाया। इहलौकिकवाद से पंथनिरपेक्षवाद तक की यात्रा मात्र एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवादित शब्द अन्वेषण के प्रयास ही नहीं है, बल्कि इसके पीछे डेढ़ सौ वर्षों के मानव चिन्तन का विकास है। इहलौकिकवाद अब मानवतावाद का पर्याय बन रहा है। इसे धारणा के स्थान पर जीवन शैली कहें तो अनुचित न होगा। प्रो फ्लिंट ने इसे ''जीवन सिद्धान्त'' ही कहा है।

हार्वे कोक्स ने अपनी पुस्तक द सैक्यूलर सिटी में इहलौकिकता की छः विशेषताएं बताई है, उसमें यह तथ्य परीलक्षित होता है–

लौकिक दृष्टि (Profanitly)– विश्व एवं समाज के प्रति लौकिक एवं तार्किक दृष्टिकोण।

उपयोगितावाद या व्यवहारवाद (Pragmatiism)– आदर्शों में कार्यों के प्रति उपयोगितावादी एवं व्यावहारिक दृष्टिकोण।

अनेकवाद (Pluralism)– विभिन्न संस्कृतियों का सह अस्तित्व, विभिन्न मतों को अभिव्यक्त व स्वीकार करने की स्वतंत्रता।

सहिष्णुता (Tolerance)– विभिन्न पंथों और मतों के प्रति सहिष्णुता एवं समभाव

अनामत्व (Anonymity)– सामान्य व्यवहार में नाम, जाति, पंथ का भेद एवं तहत्व न होना।

गतिशीलता (Mobility)– समाज के विधानों की गतिशीलता और साधनों की गतिशीलता।

होलियॉक ने इहलौकिकवाद के पांच लक्ष्य निर्धारित किये–

1. अपने आचारों–विचारों को पंथ एवं ईश्वर से पृथक रखना
2. तर्कसंगत नियमों की स्वीकृति
3. आस्था एवं श्रुतिजन्य ज्ञान की उपेक्षा
4. विचार स्वातन्त्रय
5. विश्व को श्रेष्ठ बनाने में सतत् प्रयास

होलियॉक इन्हीं आदर्शों के अनुसार श्रमिकों के अधिकारों के लिये संर्घषरत रहें तथा सहकारिता के भी प्रतिष्ठाता बने। ब्रेडलॉफ ने इन विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिये 1866 ई में राष्ट्रीय इहलौकिकवाद संघ का गठन किया। इस प्रकार

इहलौकिकतावाद को पाश्चात्य जगत् में क्रमशः वैचारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं संवैधानिक स्वीकृति मिलती गई। भारत में सविधान में पंथ निरपेक्षता का विचार इहलौकिकवाद से प्रेरित है।

आज इहलौकिकतावाद और धर्मनिरपेक्षतावाद लगभग पर्यायवाची रूप में स्वीकृत होने लगे है। यद्यपि भारतीय धर्म की अवधारधा के अनुसार धर्म स्वयं में आधार है अतः उससे निरपेक्षता अकल्पनिय है तथापि धर्म को जब पंथ या रिलिजन के रूप में देखते है तो उक्त समानता दिखाई पड़ती है।

भारतीय में सैक्यूलेरिज्म अथवा इहलौकिकवाद, सांस्कृतिक रूप में भारतीय प्राचीन परम्परा का हिस्सा है। भारत में सांस्कृतिक पंथ निरपेक्षता अत्यन्त महत्वपूर्ण है । भारत में धर्म निरपेक्षता, जिसे पंथ निरपेक्षता के अनुरूप यदि माना जाए तो यह अर्वाचीन धारणा है। हमारी धार्मिक एकता, सहिष्णुता, उदारता और समभाव की सतत् परम्परा इसका सुस्पष्ट प्रमाण है। वैदिक काल में विविध देवों की भिन्न–भिन्न ऋषियों द्वारा उपासना वस्तुतः मत–स्वातन्त्रय और पंथ निरपेक्षता का ही सूचक है। हमारी संस्कृति में अनेकता में एकता रही है। विभिन्न दर्शनों का सह–अस्तित्व एवं सहविकास इस बात का सूचक है कि भारत में प्रत्येक मनुष्य को अपने मनोनुकूल धर्म के चयन का पूर्ण स्वातंत्रय था एवं है। भारत में धार्मिक आस्था कभी भी धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता या धार्मिक अंध विश्वास का रूप नहीं ले पाई। हिन्दुओं ने नास्तिक विचार के बुद्ध को अपने दशावतारों में परिणित कर लिया। जैनों ने सभी मतों में सापेक्षतः सत्य का अंश बताया। गुरूग्रंथ साहिब में विभिन्न मतों के संतो के पद्यों को संकलित किया गया है। शक, हूण, कुषाण आदि जातियां भारत में आयी और इस संस्कृति का रस हो गयीं। जब मध्य युग में पाश्चात्य देश पोप के अधीन होकर पूर्णतः धर्मतन्त्रात्मक हो गये थे, तब भी भारत धार्मिक दृष्टि से उदार बना रहा। वास्तव में, भारत में धर्म का सम्प्रदायगत अर्थ बहुत बाद में बाहरी हस्तक्षेपों के बाद रूढ़ हुआ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रभाव जन्म से लेकर मृत्यु तक रहता है। मनुष्य संस्कारों से आबद्ध रह कर जीवन यापन करता है। धर्म से सदैव सापेक्ष ही रहता है धर्मनिरपेक्ष होना संभव नहीं है परन्तु इहलौकिकतावाद अथवा पंथ निरपेक्षता भारत में सदैव से सांस्कृतिक विचार है। अतः भारत में विभिन्न मत मतावलम्बियों ने इस संस्कृति में अपने वैशिष्टय को समाहित किया है और भारत में पंथ अथवा मत का समभाव रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. धर्म शब्द 'धृ' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है धारण करना।
2. धर्म से तात्पर्य है, वह, जो समस्त विश्व को धारण कर रही है, अर्थात सम्पूर्ण विश्व का मूल आधार और समाज की एकता को मूर्तिमान करने वाला सशक्त माध्यम है। धर्म का अर्थ है ''कर्तव्यपरायणता''।
3. भारतीय परम्परा में धर्म का त्रिविध वर्गीकरण सामान्य धर्म, विशेष धर्म एवं आपद्धर्म
4. अंग्रेजी का शब्द ''रिलिजन'' लेटिन भाषा के ''Religio'' शब्द से व्युत्पन्न माना जाता है। मान्यता यह भी है कि यह शब्द ''Religere'' धातु से निष्पन्न है इसके तीन अर्थ है– एकत्रित करना, चयन करना, और आबद्ध करना
5. प्रायः पश्चिम की अवधारणा अनुरूप रिलिजन, पंथ, मजहब अथवा सम्प्रदाय को सामान्य अर्थ में धर्म के रूप में लिया जाता है, जो कि भारतीय धर्म अवधारणा के अनुरूप नहीं है। कर्म एवं सृष्टि के शाश्वत् नियमों पर आधारित भारतीय धर्म के लिये पश्चिम में वस्तुतः कोई स्पष्ट निरूपण नहीं है।
6. धर्म सबका साझा है। रिलिजन या पंथ अपना अपना है सबका समान नहीं है।
7. साधारण रूप में धर्मनिरपेक्षता शब्द के लिये अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द सैक्यूलरिज्म (Secularism), जिसे लैटिन शब्द '' Seculam'' से बना है उसका मूल अर्थ है–यह जगत्।
8. इहलौकिकवाद अवधारणा के मूल प्रवर्त्तक ''जार्ज जैकब होलियॉक'' है।
9. भारतीय सांस्कृतिक वैचारिक दृष्टि है कि किस प्रकार तटस्थ ''इहलौकिकवाद'' भारत मे भावात्मक प्रसार पाया।
10. भारत में धर्म निरपेक्षता, जिसे पंथ निरपेक्षता के अनुरूप यदि माना जाए तो यह अर्वाचीन धारणा है। हमारी धार्मिक एकता, सहिष्णुता, उदारता और समभाव की सतत् परम्परा इसका सुस्पष्ट प्रमाण है।

अभ्यास के प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 धर्म के दस आदर्शों का उल्लेख किया है?
(अ) मनु ने (ब) व्यास ने (स) कृष्ण ने (द) अर्जुन ने

2 अग्नि का धर्म है ?
(अ) दाहक (ब) शीतलता (स) युद्ध करना (द) कोई नहीं

3 पुद्गल स्वरूप को धर्म सम मानने वाला दर्शन है ?
(अ) बौद्ध (ब) जैन (स) चार्वाक (द) सांख्य

4 अंग्रेजी भाषा के रिलिजन की उत्पति भाषा से हुई है ?
(अ) हिन्दी (ब) फारसी (स) लेटिन (द) जर्मन

5 निम्न में से कौनसा रिलिजन अब्रहामिक श्रेणी का नहीं है ?

(अ) सनातन (ब) इस्लाम (स) मसीही (द) यहूदी

6 इहलौकिकतावाद के प्रवर्त्तक माने जाते है ?

(अ) होलियॉक (ब) प्लेटो (स) हीगल (द) ब्रेडलॉफ

7 राष्ट्रीय इहलौकिकतावाद संघ की स्थापना किसने की ?

(अ) ब्रेडलॉफ (ब) प्लेटो (स) हीगल (द) नेहरू

8 धर्म के त्रिविध वर्गीकरण में निम्न में से नहीं है ?

(अ) समान्य धर्म (ब) विशेष धर्म

(स) आपद्धर्म (द) जीव धर्म

9 होलियॉक के अनुसार इहलौकिकवाद के लक्ष्य कितने है ?

(अ) दो (ब) चार (स) दस (द) पांच

10 बुद्ध को भारत में अवतारों में सम्मिलित किया है ?

(अ) दो अवतारों में (ब) दसावतारों में

(स) एक अवतार में (द) अवतार में सम्मिलित नहीं किया

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1 धर्म शब्द की व्युप्तति किस धातु से हुई है ?

2 ''दी पाथ ऑफ बुद्धा'' पुस्तक के लेखक कौन है ?

3 मनीषियों ने धर्म के दो भाग कौन कौन से बताये है ?

4 माईकिल डोमीनो के अनुसार ''रिलिजन'' किस सांस्कृतिक क्षेत्र की अवधारणा है ?

5 सामान्य धर्म का तात्पर्य क्या है ?

6 सैक्यूलरिज्म की उत्पति किस भाषा के शब्द से हुई है ?

7 इहलौकिकवाद का भावात्मक स्वरूप किस संस्कृति में सहज ही दिखाई पड़ता है ?

8 सैक्यूलर सिटी पुस्तक के लेखक कौ थे ?

9 किसी ऐसे पंथ का नाम बताये, जो अब्रहमिक समूह का नहीं है ?

10 मनु ने कितने आदर्शों को धर्म का लक्षण बताया है ?

11 धर्म की भारतीय अवधारणानुसार अग्नि का धर्म क्या है ?

12 गीता में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में किस धर्म की पालना का संदेश दिया था।

13 भारतीय अवधारणा में धर्म के त्रिविध वर्गीकरण को समझाईये।

14 रिलिजन शब्द की व्युत्पति किस भाषा के किस शब्द से हुई है।

15 क्या रिलिजन एवं धर्म दोनो समानार्थी शब्द है ? यदि नहीं तो इनमें क्या अन्तर है स्पष्ट करें।

16 इहलोकिकवाद के प्रवर्तक किसे माना जाता है?

17 इहलोकिकवाद के लक्ष्य स्पष्ट करें।

18 न्यू कालिन्य शब्दकोष के अनुसार धर्म का अर्थ क्या है ?

19 धर्म के दो भाग प्राण एवं कलेवर में कौन परिवर्तनशील है ?

20 धर्म को कर्म मानते हुए उसका त्रिविध वर्गीकरण क्या है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 धर्म नैतिक आदर्शों का ही पर्याय है इसे सिद्ध करते हुए मनु एवं व्यास के धर्म लक्षणों को उल्लेखित कीजिये ।

2 भारतीय परम्परा अनुसार धर्म के त्रिविध लक्षण बताईये एवं कर्म के आधार पर उनका वर्गीकरण स्पष्ट करें।

3 रिलिजन क्या है ? इसकी उत्पति कैसे हुई ? इसके अर्थ की व्याख्या कीजिये ।

4 भारतीय धर्म अवधारणा पश्चिम के रिलिजन की अवधारणा से कैसे भिन्न है ? स्पष्ट करें।

5 धर्म और पंथ में कोई छह भिन्नताऐ बताईये ।

6 इहलौकिकतावाद का अर्थ अनिश्वरवाद नहीं है । इसे बताते हुए इहलौकिकतावाद की विशेषताऐं बताईये ।

7 होलियॉक द्वारा बताई इहलौकिकवाद की विशेषताएं उल्लेखित कीजिये।

8 रिलिजन की अवधारणा भारतीय नहीं है ? इसे व्यक्त करने के लिये स्वामी रामकृष्ण परमहंस एवं माईकिल डोमिनो की परिभाषाऐं लिखिये।

9 सैक्यूलरिज्म शब्द उत्पति कैसे हुई ? यह अनिश्वरवाद से कैसे पृथक है समझाईये ।

10 भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में इहलौकिकतावाद अथवा सैक्यूलरिज्म भारतीय परम्परा का हिस्सा है उदाहरण सहित समझाईये।

निबंधात्मक प्रश्न

1 भारतीय धर्म की अवधारणा नैतिकता एवं कर्म पर आधारित है कथन की पुष्टि करते हुए धर्म के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।

2 धर्म एवं रिलिजन शब्द पृथक–पृथक है ? रिलिजन की व्याख्या करते हुए, धर्म से इसकी भिन्नता स्पष्ट कीजिये।

3 सैक्यूलरिज्म तथा इहलौकिकतावाद की अवधारणा को अभिव्यक्त कीजिये। होलियॉक द्वारा स्थापित इस सिद्धान्त की विशेषताएं एवं लक्ष्य उल्लेखित कीजिये।

4 भारतीय अवधारणा अनुरूप धर्म से निरपेक्ष होना संभव नहीं है परन्तु भारत में पंथ निरपेक्षता एवं मतों में समभाव सांस्कृतिक परम्परा है। कथन को पुष्ट करने के लिये

उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न की उत्तर माला

1 (अ) 2 (अ) 3 (ब) 4 (स) 5 (अ)
6 (अ) 7 (अ) 8 (द) 9 (द) 10 (ब)

संदर्भ ग्रंथ

1 धर्म तत्त्व का दर्शन और मर्म– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय (अखण्ड ज्योति संस्थान, मथूरा)

2 धर्म–दर्शन – डॉ. कृष्णा कांत पाठक(राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल)

3 धर्म–दर्शन– डॉ. रामनारायण व्यास (मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल)